नई तालीमः उत्पादक कार्य से सीखनाः एक चिन्तन

प्रदीप दासगुप्ता

महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) को आमतौर पर एक ऐसी शिक्षा पद्धति माना जाता है जो उत्पादक कार्य पर आधारित होती है। पर हम सभी को यह बात स्पष्ट होना चाहिए कि जहाँ उत्पादक कार्य इसका आधार है, वहीं काम के द्वारा सीखना इसकी अनोखी विशेषता है।

अब तक नई तालीम के बारे में बहुत–सी बातों की चर्चा हो चुकी है। शिक्षा के बारे में गाँधी जी के विचारों को स्पष्ट रूप से जानने के लिए हमें 'हरिजन' या 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित उनके लेखों का अध्ययन करना जरूरी है। यहाँ हमारे वर्तमान सन्दर्भ के लिए उनके लेखन से ली गई केवल कुछ पंक्ति को देखने की जरूरत है:

'..लेकिन हर हस्तकला को सिर्फ यांत्रिक रूप से नहीं सिखाया जाना है जैसा कि आज किया जाता है, बल्कि उसे वैज्ञानिक तरीके से सिखाना होगा, अर्थात हर बच्चे को हर प्रक्रिया के बारे में क्यों और किसलिए भी जानना चाहिए।' (हरिजन, 31. 07. 1937)

वे ऐतिहासिक घटनाएँ सभी को अच्छी तरह ज्ञात हैं जिनके परिणामस्वरूप बुनियादी शिक्षा को शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की तरह अपनाया गया। उसके क्रियान्वयन वाले हिस्से में, उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षा को सीखने को बाकी प्रक्रिया में इस तरह से समेकित किया गया था कि सीखने की अन्य शिक्षण पद्धतियों से उसका अन्तर समझ पाना कठिन है। इसलिए यह जरूरी है कि इससे सरोकार रखने वाले लोगों को इस प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं की कुछ जानकारी हो।

सरकारी स्कूलों के साथ ही कई गाँधीवादी आश्रमों में नई तालीम शिक्षा व्यवस्था का अनुसरण किया जाता था। आश्रम ऐसे आवासीय परिसर होते हैं जहाँ सभी काम करने वाले एक सामुदायिक जीवन शैली अपनाते हुए साथ रहते हैं और अपनी–अपनी योग्यताओं के अनुसार सारा काम मिलकर करते हैं। उनकी साझा रसोई (किचिन) होती है, अर्थात उनका खाना इकठ्ठा बनता है।

मुझे ऐसे एक आश्रम स्कूल में पढ़ने का सुअवसर मिला था। उसकी स्थापना मेरे पिता श्री चित्त भूषण दासगुप्ता द्वारा माझीहिरा नामक एक दूरदराज के गाँव में की गई थी, जो अब पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले में हैं। मेरे पिता उन पहले लोगों में से थे जिन्हें पटना के बेसिक ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षित किया गया था। उत्पादक कार्य और सेवा किस तरह से विद्यार्थियों की शिक्षा का अभिन्न अंग थे, यह समझने के लिए संक्षेप में आश्रम के जीवन का वर्णन करना लाभकारी होगा।

आयु समूहों के अनुसार स्कूल के तीन भाग थे : 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए पूर्व–बुनियादी (या प्री–बेसिक), निचला बुनियादी (या जूनियर बेसिक) जो 5 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए था और उच्च बुनियादी (या सीनियर बेसिक) जो 11 से 13/14 साल के 6वीं से 8वीं कक्षा के बच्चों के लिए था। उच्च बुनियादी के बाद एक उत्तर बुनियादी (या पोस्ट–बेसिक) खण्ड भी था।

आश्रम की आम दिनचर्या किसी भी अन्य अनुशासित स्कूल के समान ही थी। मौलिक अन्तर आश्रम के द्वारा अपनाई गई जीवनशैली में था। कक्षा 6 से कक्षा 8 तक (उच्च बुनियादी) के विद्यार्थियों को 6 समूहों में बाँट दिया गया था। चक्रीय पद्धति से सप्ताह के 6 दिनों में से प्रत्येक दिन एक समूह को एक कार्य करने को सौंपा जाता था। रविवारों को विशेष साफ–सफाई और धुलाई जैसे कामों के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

सौंपे गए काम ये होते थे :

- प्रार्थना के लिए व्यवस्था करना

- रसोइए की सहायता करना और भोजन के दौरान परसने का कार्य
- रोगियों की परिचर्या करना (रोगी सेवा)
- मेहमानों की परिचर्या करना (अतिथि सेवा)
- दाँत साफ करने के लिए दाँतून लाना और वितरित करना
- शौचालयों की सफाई करना (सबसे महत्त्वपूर्ण)

उत्पादक कार्य में ये काम शामिल थे : कपड़ा उत्पादन के सभी चरण अर्थात कपास की खेती करना, फसल काटना, रुई से बिनौला अलग करना (जिनिंग), प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग), टेपिंग, धुनकना (कार्डिंग), घनी पूनियाँ बनाना (स्क्रंचिंग), सूत कातना (स्पिनिंग), कपड़ा बुनना, पहिनने के कपड़े सिलना; बढ़ई का काम, सब्जियाँ उगाना और फूलों की बागवानी आदि कार्य सभी के लिए थे। कागज बनाना, साबुन बनाना, 'घानी' के द्वारा खाने के तेल का उत्पादन जैसे कार्य उत्तर बुनियादी (कक्षा 8 से ऊपर) के विद्यार्थियों के द्वारा किए जाते थे।

बढ़ईगीरी जैसी सभी हस्तकलाओं से और भारी औजारों से खोदने जैसे कठिन परिश्रम और माँसपेशियों की ताकत लगने वाले कार्यों से कक्षा 5 तक के विद्यार्थियों को छूट दी जाती थी। अन्य उत्पादक कार्यों की तरह धान की खेती भी ऋतु आने पर की जाती थी।

कलात्मक गतिविधियाँ जैसे कि चित्रकारी, संगीत, नृत्य और नाट्यकला, आश्रम के जीवन का अभिन्न हिस्सा थीं। यहाँ यह गौर करना चाहिए कि ये केवल गतिविधियाँ नहीं थीं, बल्कि इन सभी कलाओं में बच्चे का भाग लेना उसे मनौवैज्ञानिक रूप से अधिक परिपक्व बनाता था।

इन सभी गतिविधियों का मिला–जुला प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ता था। 'शिक्षा के साथ किए जाने वाले कार्य' के उत्पादन उच्च गुणवत्ता वाले होते थे और उनमें निर्माण करने वाले को मिले संतोष की भावना भी निहित होती थी।

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि जो उत्पादक कार्य शिक्षा हमने उन वर्षों में प्राप्त की उसमें ऐसे स्थानीय कारीगरों से सीखना भी शामिल था जिन्होंने पीढ़ियों से उस तरह के काम का अभ्यास किया था और इसलिए वे उसमें अत्यन्त कुशल होते थे। परन्तु, ऐसा सीखना केवल यांत्रिक विधि सीखना मात्र नहीं होता था, जैसा कि उसे समाज में समझा जाता है, बल्कि उसे वैज्ञानिक ढंग से सीखा जाता था अर्थात जिसमें बच्चे को हर प्रक्रिया के क्यों और किसलिए वाले पहलुओं को जानना चाहिए। हालाँकि यह आंशिक रूप से ही किया जाता था, पर तब बच्चों के मन में बीज तो बो ही दिए जाते थे और वे बाद में फलते–फूलते थे। जैसा कि मेरे साथ हुआ जब मैंने बाद में सामान्य रूप से उच्च शिक्षा और विशेष रूप से भौतिकशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की।

यहाँ उत्पादक कार्यों में से एक, कपड़े के उत्पादन, का संक्षिप्त विवरण उपयोगी होगा।

चरण 1 : कपास की खेती

प्रक्रिया : कपास की खेती की प्रक्रिया में बैलों से जमीन की जुताई करना, समतलीकरण, बीज बोना, सिंचाई करना, खर–पतवार निकालना और फसल काटना आदि कार्य शामिल रहते थे। इस प्रक्रिया ने हमें बैलों की अलग–अलग जोड़ियों की खींचने की क्षमताओं की समझ प्रदान की, जिनका उपयोग करके हल को सीधी रेखा में आगे ले जाना पड़ता था। इसका मतलब होता था कि दोनों बैलों को न केवल आकार में, बल्कि उम्र में भी लगभग बराबर होना जरूरी होता था (जानवरों की ऊर्जा और शक्ति की उनके आकार और उम्र पर निर्भरता के बारे में पशुओं की जीवशास्त्रीय समझ विकसित करना)। बाद में हमने भौतिकशास्त्र में सीखा कि यदि एक ही वस्तु पर दो समान्तर, पर असमान बल कार्य करते हैं, तो वह सीधी रेखा में गति नहीं करती। हल को जमीन से एक खास कोण बनाने के हिसाब से बनाया जाता था, कोण के उससे अधिक होने पर बैलों के लिए उसे खींचना मुश्किल हो जाता था। कोण के कम होने पर जुताई उतनी गहरी नहीं होती थी जितनी खेती के लिए जरूरी थी। इन दोनों में भी पहली बात अधिक महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि आवश्यक होने पर जुताई दोबारा की जा सकती थी। इस कार्य ने हमें यह समझ भी दी कि भिन्न–भिन्न पौधों की जड़ें किस प्रकार की होती हैं। जमीन के समतलीकरण और कतारों को बराबर फासले पर बनाने के काम में, मापन की शिक्षा। हर पौधे को स्वस्थ ढंग से बढ़ने और साथ ही कटाई के समय उनके बीच लोगों के चल फिर सकने के लिए, पर्याप्त जगह होने की जरूरत (इस प्रकार मनुष्य के शरीर की भी समझ) की शिक्षा शामिल थी। जिन खेतों में हम काम करते थे वे अपेक्षाकृत छोटे थे अत: खर–पतवार निकालने का काम हाथ से किया जाता था। खर–पतवार निकालने से हमने सीखा कि किस तरह कुछ पौधों में जीवित रहने की क्षमता अन्य पौधों से अधिक

होती है। ज्यादातर उपयोगी पौधों में यह क्षमता उन पौधों से कम होती थी जिनका तब तक हम कोई उपयोग नहीं ढूँढ़ पाए थे। इस तरह काम के इस हिस्से के द्वारा हमने भौतिकी, रेखागणित, वनस्पतिशास्त्र और खोजों के इतिहास के बारे में सीखा।

चरण 2 : कपास का प्रसंस्करण

इसमें शामिल कार्य थे : कपास के गोलों को उनके छिलके से अलग करना, फिर उनमें से बीजों या बिनौलों को निकालना (जिनिंग), साफ करना और उनसे पूनियाँ (कताई के लिए बेलनाकार लम्बी मोटी बत्तियाँ) बनाना।

कपास के शोधन के लिए उसकी फूली हुई गाँठों को हाथ से तोड़ना पड़ता था। इस काम का एक जरूरी हिस्सा यह आकलन करना होता था कि कौन–से फूले हुए गोले तोड़ने के लिए परिपक्व हो चुके थे। कपास के खेत की कतारों के बीच में समय–समय पर घूमकर देखना जरूरी था क्योंकि सभी गाँठें एक साथ नहीं तोड़ी जा सकती थीं। कच्चे या गीले फलों में समुचित रूप से विकसित रेशे नहीं होते थे और देर से तोड़ने पर रेशे को नुकसान पहुँचता था। इससे हमें पौधों के जीवन के बारे में बुनियादी समझ प्राप्त हुई।

जिनिंग कपास के रेशों को कपास के बीजों (बिनौलों) से अलग करने की प्रक्रिया होती है। छोटे पैमाने पर, जब फसल उन्हें अलग करने के इस काम के लिए पर्याप्त सूखी होती थी तो इसे हाथ से किया जाता था। इसमें रेशों को तोड़े बिना हल्के से अलग करने के लिए, हाथों से डाला जाने वाला दबाव और गति एकदम सही होना जरूरी था। हाथों से चलाई जाने वाली जिनिंग मशीन में दो समानान्तर सिलेंडर थे जिन पर लम्बाई की दिशा में समान दूरी पर नालियाँ बनी हुई थीं। एक हत्थे को घुमाने के द्वारा कपास के गोलों को उन दोनों सिलेंडरों के बीच से गुजारा जाता था। सिलेंडरों के बीच का फासला बहुत महत्त्वपूर्ण होता था। यदि फासला ज्यादा होता था तो वह बीजों को उन्हें अलग करने वाले पुर्जे के नीचे आने देता था और वे कुचल जाते थे, जबकि कम अन्तर होने पर रेशे टूट जाते थे, जिससे कातने के लिए कपास बेकार हो जाती थी। आगे के प्रसंस्करण के लिए भी इसी प्रकार के कौशलों और ज्ञान की जरूरत होती थी।

इस पूरी प्रक्रिया से हमने कपास के रेशे की प्रकृति, उसकी लम्बाई, उसको तोड़ दे सकने वाले तनाव और इसलिए दबाव के आवश्यक हल्केपन के बारे में सीखा। इस प्रकार सूत में बदलने से पहले रेशों के साथ कैसे काम करना चाहिए, यह जाना। बाद के एक चरण में हमने पदार्थों की मजबूती के बारे में पढ़ा। ऐसा सीखने का प्रभाव प्रयोगशाला में की गई एक बार की जाँच से बेहतर होता है।

कपास का गोला

चरण 3 : सूत कातना

पेटी वाला या बॉक्स चरखा जो अपने–आप में प्रौद्योगिकी का अद्‌भुत नमूना था

पेटी वाला चरखा एक बुद्धिमत्तापूर्ण मशीनी उपकरण था जिसे स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान स्वयं महात्मा गाँधी के मार्गदर्शन में कताई को लोकप्रिय बनाने, उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने और सूत की गुणवत्ता सुधारने के लिए ईजाद किया गया था।

आजादी की लड़ाई में "चरखे" की भूमिका सभी को अच्छी तरह ज्ञात है।

मूल चरखे में एक बड़ा चक्का होता था जो तकुए को घुमाता था। चक्के का बड़ा आकार छोटे से तकुए को पर्याप्त चक्कर लगवाने के लिए जरूरी होता था, ताकि रेशों को सूत में बदला जा सके।

परन्तु, चक्के के बड़े आकार के कारण उसे कहीं लाना, ले जाना कठिन होता था। उसकी जगह ऐसा उपकरण होना जरूरी थी जो कम जगह घेरे, जिसे उसके पुर्जे जोड़कर बनाना, और जिससे काम करना आसान हो। पेटी वाले चरखे को खादी कार्यकर्ता अपने साथ एक गाँव से दूसरे गाँव ले जा सकते थे और इस तरह वे खादी के आन्दोलन को लोकप्रिय बना सके।

बॉक्स चरखा खुद ही घिर्रियों की व्यवस्था, घर्षण, तनाव और घूर्णन गति की पूरी धारणा के बारे में बुनियादी जानकारी प्रदान करता है, जो भौतिकी और यांत्रिकी सीखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत आधारभूत ज्ञान होता है। सिर्फ चित्र को ही देख कर कोई भी इसकी अधिकांश विशेषताओं को समझ सकता है, शेष तब स्पष्ट हो जाता है जब कोई वास्तव में इसके साथ काम करना आरम्भ करता है।

चरण 4 : बुनाई एवं चरण 5 : कपड़े सिलना (इन्हें भी इसी प्रकार समझा जा सकता है)

उत्पादक कार्य और साथ ही अन्य प्रकार के कार्यों ने विद्यार्थियों में (खासतौर पर मुझमें) जिन कौशलों और गुणों को विकसित किया, उन्हें इस प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है :

- कार्य प्रणाली की समझ
- किसी बात के कारण और उसके प्रभाव के बीच सम्बन्ध
- चीजों के परस्पर अनुपात, माप, और तालमेल का बोध
- लागत का प्रभावी उपयोग
- पर्यावरण और प्रकृति का संरक्षण
- पूछने और जानने की भावना
- करुणा, भाईचारा, दल में मिलजुल कर काम करना आदि जैसे मानवीय गुण

आमतौर पर माना जाता है कि नई तालीम व्यवस्था केवल निम्न स्तर के हाथ से किए जाने वाले कामों के लिए ही उपयुक्त है, परन्तु बौद्धिक कार्यों के लिए नहीं, और यह भी कि नई तालीम से निकले विद्यार्थी आधुनिक उच्च शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते। मेरा व्यक्तिगत अनुभव इससे विपरीत रहा है। उच्च शिक्षा के प्रारम्भिक चरणों को छोड़कर, जब पढ़ाई के माध्यम के रूप में अँग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण और स्थान परिवर्तन के फलस्वरूप हुए सांस्कृतिक भेदों के कारण मुझे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, बाद में मुझे सीखने या पढ़ाने (जिनके बारे में कुछ जानकारी आगे दी गई है) में कोई कठिनाई नहीं हुई। बल्कि, ऊपर उल्लेख किए गए गुणों के कारण दूसरे लोग मुझे एक अलग प्रकार के व्यक्ति के रूप में देखते थे। ऐसा ही अनुभव अनेक अन्य लोगों का भी रहा है जिन्होंने नई तालीम प्रणाली से शिक्षा प्राप्त की थी।

ऊपर किए गए कुछ दावों की पुष्टि मेरे व्यक्तिगत अनुभवों से की जा सकती है। अँग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण, विद्यार्थी के रूप में मुझे सैद्धान्तिक पहलू को समझने कुछ कठिनाइयाँ हुईं। परन्तु, प्रायोगिक भौतिकी में, मैं अपनी कक्षा के अधिकांश विद्यार्थियों से बेहतर माना जाता था क्योंकि मुझमें यह समझने का कौशल था कि कोई मशीन और उसके पुर्जे किस तरह काम करते हैं। हालाँकि उन दिनों कभी भी हमें बिजली उपलब्ध नहीं होती थी, फिर भी मैं विद्युतीय उपकरणों और साथ ही कुछ उन्नत किस्म के विद्युत–चुम्बकीय, प्रकाश–सम्बन्धी उपकरणों की कार्य–प्रक्रिया और उनके काम करने के सिद्धान्त को समझने में समर्थ होता था। एम.एससी. के विद्यार्थी की तरह, जीमान प्रभाव (शक्तिशाली विद्युत–चुम्बकों, उच्च गुणवत्ता वाले काँच की समानान्तर प्रकाशीय प्लेटों और एक विशेष प्रिज्म का उपयोग करने वाले, परमाणु भौतिकी के एक प्रयोग) के लिए बने एक उपकरण में मुझे एक चुनौती का सामना करना पड़ा। मेरे लिए उसमें किए जाने वाले आवश्यक सुधार कार्य को समझना कठिन नहीं था। एकबारगी जब मुझे अपने शिक्षक से निर्देश प्राप्त हो गया तो मैंने स्वयं ही उसे कर भी लिया।

भौतिकशास्त्र के शिक्षक के रूप में मैं एक विभाग में अन्य लोगों के साथ काम करता था। मेरी नई तालीम की पृष्ठभूमि मुझे हर स्थिति को अधिकांश अन्य लोगों से ज्यादा अच्छी तरह समझने में मदद करती थी। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि आश्रम का जीवन आपको समूह में मिलकर काम करने की पृष्ठभूमि प्रदान करता है, क्योंकि वैसे जीवन में दल के सभी सदस्यों का आपस में सामंजस्य होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। जिस कालेज में मैं पढ़ाता था उसमें तीनों धाराओं – कला, विज्ञान तथा वाणिज्य – में 11वीं से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की कक्षाएँ थीं जिनमें लगभग चार हजार विद्यार्थी थे। दो सौ से अधिक शिक्षक और अन्य स्टाफ के सदस्य थे। वे सब एक चार मंजिला इमारत में काम करते थे जिसमें केवल 15 कक्षाएँ लेने के कमरे थे। उसकी व्यवस्था की खामियों को समझने के बाद, मैं पूरे कालेज की समय–सारिणी में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दे सका, जिनको बहुत सराहा गया और लागू किया गया।

शिक्षक की तरह अपने सहकर्मियों की अपेक्षा मैं अपने विद्यार्थियों से कहीं बेहतर संवाद स्थापित कर पाता था, जिसका कारण कार्यप्रणाली की वह समझ थी जो मैंने नई तालीम के विद्यार्थी की तरह विकसित की थी। समूह

में मिलकर काम करने की भावना के कारण, मैं अपनी प्रयोगशाला के सहायकों से भी नई जानकारियाँ हासिल कर पाता था। इसके कारण मुझे प्रतिकूल स्थितियों में भी आगे बढ़ने में मदद मिलती थी।

मुझे स्वीकार करना होगा कि ऐसे कारीगरों से सीखने की अपनी सीमाएँ होती थीं जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान विषयों के नियमों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता था। वे उत्पादन के हर चरण के पीछे के कारण तो समझा सकते थे, पर वे ऐसे व्यापक नियम नहीं बता पाते थे जो विशुद्ध विज्ञान सीखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। दूसरी ओर, औपचारिक स्कूली शिक्षा की व्यवस्था में स्थिति विपरीत होती थी और आज भी है। नियम और सिद्धान्त तो बहुत अच्छी तरह पढ़ाए जाते हैं, परन्तु विद्यार्थी वास्तविक जीवन में उनके उपयोग के बारे में नहीं जानते। (हमें अकसर सुनने में आता है कि आजकल के स्नातक 'काम पर रखे जाने लायक' नहीं होते)।

हमारे सामने चुनौती इस ज्ञान को हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जोड़ने की और उनको व्यावहारिक रूप से उपयोग में लाने की है। सबसे पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात उन क्षेत्रों की पहचान करना है जिन पर कार्यवाही को केन्द्रित करना चाहिए। चूँकि शिक्षक ही वे लोग हैं जो अवधारणाओं को व्यावहारिक उपयोग में बदलेंगे, इसलिए शिक्षकों की तैयारी को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

विषयवस्तु के मामले में एन.सी.ई.आर.टी.ने, आधुनिक संसार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में प्रशंसनीय काम किया है। अब जरूरत ऐसी कार्यपुस्तिकाएँ (मॉड्यूल्स) तैयार करने की है जो ज्ञान को छोटी और आसानी से समझी जा सकने वाली इकाइयों में परिवर्तित कर देंगी। उसका सम्बन्ध रोजमर्रा के सामान्य कामों से, विशेष रूप से उत्पादक कार्यों से जोड़ेंगी और उनका उपयोग करने वाले जमीनी स्तर के शिक्षक तैयार करेंगी। यह प्रस्तावित किया गया है कि शिक्षकों की तैयारी के दौरान एक प्रारम्भिक चरण में उनका नई तालीम से परिचय कराया जाए। इसके बाद इस पद्धति के बारे में विचार–विमर्श का एक उन्मुखीकरण कार्यक्रम हो और फिर इसके ज्ञान को व्यवहार में उपयोग करने के लिए उनकी सहायता की जाए। यहाँ सभी लोगों का इस ओर ध्यान दिलाना जरूरी है कि इस पद्धति में आश्रम के रूप में जीवन जीना आवश्यक होता है, जिसमें वैज्ञानिक शिक्षा को सामाजिक और आर्थिक रूप से सार्थक बनाने के लिए, उत्पादक कार्य के साथ–साथ सहभागिता और समूह में मिलजुल कर काम करना जीवन का आवश्यक अंग होता है।

इसके लिए काम तो पहले ही आरम्भ हो चुका है। हमें जरूरत उसे एक आन्दोलन में बदलने की है।

प्रदीप दासगुप्ता सेंटर फॉर बेसिक साइन्सेज, मुम्बई विष्वविद्यालय तथा डिपार्टमेंट ऑफ एटोमिक इनर्जी में इंट्रोडक्टरी लेबोरेटरी कोर्स के अतिथि शिक्षक हैं। वे होमी भाभा सेण्टर फॉर साइंस एजुकेशन (टी.आई.एफ.आर.) के जूनियर साइंस एण्ड ऐस्ट्रोनोमी ओलंपियाड के स्रोत व्यक्ति, नई तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा के मंत्री तथा माझीहीरा नेशनल बेसिक एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन, पुरुलिया जिला, पश्चिम बंगाल के प्रेसीडेंट भी हैं। पहले उन्होंने 36 वर्षों तक +2 स्तर के भौतिकशास्त्र के शिक्षक के रूप में सिद्धार्थ कालेज ऑफ आर्ट्स, साइंस एण्ड कामर्स, मुम्बई (जो भारत रत्न डा. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा स्थापित किया गया था) में काम किया है। उनसे pkd.1955@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।